ध्यान का वैज्ञानिक विवेचन

डा० ए० कुमार, एम० डी० (मेडीसिन)

मंडला, (म० प्र०)

भारतीय पद्धति में ध्यान आध्यात्मिक विकास की एक सर्वमान्य प्रक्रिया है। विभिन्न दर्शनों में इसे विविध नाम-रूपों से निरूपित किया गया है। "ध्यै" संप्रसारणे या प्रवाहे से यह प्रकट होता है कि इसका एक ध्येय तो शरीर-तन्त्र में प्राणों के, वायु के, प्राणशक्ति के प्रवाह की तीक्ष्णता एवं एकतानता है। इसके अनेक लाभ शास्त्रों में वर्णित हैं। ये मानसिक एवं आध्यात्मिक कोटि के माने जाते हैं। वस्तुतः मन या मस्तिष्क, (जिसे जैन द्रव्यमन कहते हैं) शरीर का ही एक धटक है। यह सुज्ञात है कि शरीर तथा मन का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। अतः शरीर प्रभावी प्रक्रियाएँ मन को स्वतः प्रभावित कर उसकी वृत्तियों में परिवर्तन उत्पन्न करतो हैं। आधुनिक मनोविज्ञान ने मानसिक वृत्तियों के कारण, उन्हें विकसित करने या सुधारने के उपाय तथा मानसिक विकृतियों को दूर करने की प्रक्रियाएँ विकसित की हैं। फिर भी, प्राच्य योगी यही मानते हैं कि ध्यान योग वहीं से प्रारम्भ होता है, जहां मनोविज्ञान का अन्त होता है। यह ठीक वैसे ही है, जैसे धार्मिक जन यह मानते हैं कि धर्म वहीं से प्रारम्भ होता है, जहां विज्ञान के क्षेत्र का अन्त होता है। विज्ञान एवं मनोविज्ञान के लाभों को स्वीकार करते हुए भी इन दोनों के क्षेत्रान्त एवं धर्म-क्षेत्र/ध्यान-क्षेत्र के प्रारम्भ के बीच इनको सम्पर्कित करने वाली कोई कड़ी होती है, ऐसा नहीं लगता। दोनों का उद्देश्य परिवर्वित हो जाता है—लौकिक से लोकोत्तर, दृश्य से अदृश्य और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर। अतः, सम्भवतः, सम्पर्क कड़ी का प्रश्न ही नहीं उठता।

वर्तमान युग में भारतीय योगियों की यह मान्यता है कि ध्यान की एकाग्रता मनोवृत्तियों के नियंत्रण, रूपान्तरण एवं समभाव के लिये अधिक उपयोगी है। उनके अनुसार, ध्यान केवल मानसिक या आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया मात्र नहीं है, यह शरीर-तंत्र के शोधन एवं मार्गान्तरीकरण की प्रक्रिया भी है। अतः ध्यान शरीर, मन और भावनाएँ तथा अध्यात्म-तीनों दिशाओं में लाभकारी है। इसका प्रभाव शरीर से प्रारम्भ होता है और आत्म-विजय तक जाता है। अतः आज का योगी केवल वानप्रस्थों, संन्यासियों, साधुओं या साधकों को हो ध्यान का अधिकारी नहीं मानता, वह तो बच्चों से लेकर बुजुर्गों तक के लिये ध्यान के अभ्यास की प्रेरणा देता है। उसका तो यह भी कथन है कि अस्सी वर्ष से अधिक उम्र वालों के लिये ध्यान ही एकमात्र औषध है। वह ध्यान को हलुवे में चीनी, सब्जी में नमक एवं छोले में मसाले के समान जीवन को परिपूर्ण एवं सुखी बनाने का उत्तम उपाय मानता है। वह मानता है कि बीसवीं सदी की निरन्तर तनावपूर्णता से त्राण पाने एवं नीतिपूर्ण जीवन बिताने के लिये ध्यान-योग ही एक उपाय है। जो काम औषधियाँ नहीं कर सकतीं, वह ध्यान करता है।

ध्यान की यह उपयोगिता उसकी व्यापक परिभाषा पर निर्भर है। इसके अन्तर्गत आसन, प्राणायाम तथा एकाग्रता के अभ्यास समाहित हैं। जैनों ने आसनों को तो महत्व दिया है, पर प्राणायाम को गौण माना है। इस मत में संशोधन होना चाहिये। विभिन्न प्राणायाम शारीरिक होते हुए भी शरीर-शुद्धि एवं मस्तिष्क-शुद्धि कर उसे ध्यानाभिमुखी बनाते हैं। यही अन्तःशक्ति के प्रस्फुटन का स्रोत है।

ध्यान के शास्त्रीय लाभों को सामान्य-जन तक पहुँचाने के लिये अनेक सन्यासियों एव संस्थाओं द्वारा प्रयास किये जा रहे हैं। भारत में अनेक स्थानों पर (बम्बई, लोनावला, मुंगेर आदि) ध्यान की प्रक्रिया और प्रभावों पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधुनिक दृष्टि से अनुसंधान किये जा रहे हैं। ब्रिटेन, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, फ्रांस, जर्मनी आदि अनेक पाश्चात्य देश भी इस दिशा में भारतीयों के सहयोग से काम कर रहे हैं। लोनावला के करमबेलकर और घारोटे, मुंगेर के स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, मेनिंजर संस्थान, अमेरिका के स्वामी राम, सत्यानन्द आश्रम, गोस्फोर्ड (आस्ट्रेलिया) के चिकित्सा-शास्त्री सन्यासी स्वामी शंकरदेवानन्द और कर्मानन्द सरस्वती तथा आचार्य तुलसी व उनके शिष्य साधु-साध्वीगण इस क्षेत्र में महनीय कार्य कर रहे हैं। महर्षि महेश योगी, स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती, आचार्य रजनीश तथा ब्रह्म-कुमारियों ने भी ध्यान के विशिष्ट रूपों को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में व्यापक बनाने का प्रयत्न किया है। इन सभी के कार्यों से भारत के साथ विश्व के अनेक भागों में ध्यान के प्रति जागरुकता बढ़ी है। यह मन्तव्य इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि अकेले स्वामी सत्यानन्द द्वारा संचालित योग-प्रचार-कार्य में सत्तर हजार से अधिक वेतनभोगी योग-शिक्षक विश्व के कोने-कोने में लगे हुए हैं। इनकी योग प्रक्रिया का लाभ जेल के कैदियों, स्कूलों के बच्चों, अपराधियों तथा तनावपूर्ण वातावरण के कारण उत्पन्न रोगों के शिकार अनेक व्यक्तियों को मिल रहा है। इस कार्य में विदेशियों का योगदान सर्वाधिक है। स्वामी सत्यानन्द को इस बात का कष्ट है कि जो भारत ध्यान-विद्या का जन्मदाता माना जाता है, वह इस कार्य में बहुत पीछे है। यही नहीं, स्विट्जरलैंड, इटली तथा फ्रांस आदि देशों में ध्यान-योग को स्कूलों के नियमित पाठ्यक्रम में समाहित किया जा रहा है। भारत में भी कुछ योग-शिक्षण केन्द्र खुले हैं, पर वे इतने लोकप्रिय नहीं हो पा रहे हैं। इसका एक ताजा उदाहरण शारीरिक शिक्षा संस्थान, ग्वालियर का है, जहाँ योग शिक्षकों को शरीर शिक्षा के क्षेत्र में मान्यता तो क्या, प्रशिक्षण तक देना खतरनाक माना जाता है। आचार्य तुलसी भी प्रेक्षा-ध्यान के माध्यम से कैदियों, विद्यार्थियों एवं जन-साधारण को इस दिशा में प्रेरित कर रहे हैं। देश में ध्यान-शिविरों की वर्तमान संख्या भारत में इसकी बढ़ती हुई लोकप्रियता का प्रतीक है।

वर्तमान में ध्यान-योग का प्रचार भारत की लुप्त या प्रसुप्त संस्कृति का प्रतीक है। महाप्रज्ञ ने बताया है कि कुछ आचार्यों ने काल और परिस्थिति का नाम लेकर ध्यान से लौकिक और अलौकिक सिद्धियों की प्राप्ति का निषेध कर दिया (ये सिद्धियाँ वैसे भी आनुषंगिक मानी जाती हैं) और अनेक विच्छेद बताकर ध्यानमार्ग में अवरोध उत्पन्न कर दिया। इससे सदियों तक ध्यान-मार्ग कुण्ठित हो गया। लोग अध्यात्म मार्ग के बदले व्यवहार मार्ग और लोकसंग्रह की ओर मुड़ गये। लगता है, अब युग परिवर्तित हो रहा है। यह शुभ लक्षण है।

ध्यान की आधुनिक परिभाषा

योगियों ने ध्यान के विषय में कुछ भी कहा हो, पर ध्यान के वस्तुतः तीन आयाम हैं—शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक। ये तीनों ही धर्म, भाषा और राजनीति से परे हैं। ध्यान का प्रथम प्रभाव शरीर-तन्त्र पर पड़ता है, रक्तचाप, हृदय, ग्रन्थियों और भावनाओं पर पड़ता है। यह उत्तरोत्तर शरीर, मन और अन्तश्चेतना को ऊर्ध्वमुखी बनाता है। अन्य शारीरिक क्रियाओं के समान ध्यान से भी मस्तिष्क की तरंगों में परिवर्तन होता है। ध्यान के अभ्यास से इन तरंगों की प्रकृति, परिमाण एवं तीव्रता में परिवर्तन होता है। अतः यह मन को विश्रान्त एवं स्थिर करने की प्रक्रिया है। इससे इन्द्रियाँ भी स्वतः नियन्त्रित हो जाती हैं। ध्यान के अभ्यास से शरीरस्थ अनेक चक्र और मेरुदण्ड में जागरण होता है। इससे हमारी अन्तःशक्ति में वृद्धि होती है। ध्यानयोग व्यक्तित्व के निर्माण की विद्या है। यह एटम-बम के समान विनाश नहीं करती। यह आत्म-बम है, यह शक्ति-संचय की विद्या है। यह तामसिक वृत्ति को नष्ट कर राजसिक एवं सात्विक वृत्ति को उत्तरोत्तर विकसित करती है।

ध्यान शरीर और मन—दोनों को शक्तिशाली बनाता है। हमारी बीमारी की उत्पत्ति प्रथमतः हमारे मन में होती है। ध्यान मन की वासनाओं, अवरोधों व संस्कारों को दूर कर चेतना जागृत करता है। इससे व्यक्ति में रोगप्रतीकार क्षमता बढ़ती है। ध्यान और प्राण विद्या शरीर में उच्च ऊर्जा स्तर बनाने में सहायक होते हैं। हमारे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भौतिक शरीर के लिये विश्राम, उत्सर्जन, आहार, सफाई एवं नियंत्रण की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार मन के लिये भी संस्कार, उथल-पुथल एवं तनाव आदि को निकालने की आवश्यकता होती है। ध्यान मन का प्रक्षालन करता है। यह मन के लिये जुलाब का काम करता है। तत्पश्चात् यह मन की सुप्त क्षमताओं को जागृत करता है।

ध्यान केवल बाह्य विषयों, दृश्यों से मन को हटाने की प्रक्रिया मात्र नहीं है। यह इष्ट या लक्ष्य के प्रति जागृति एवं आन्तरिक सम्बन्ध बढ़ाने की भी साधना है। जब मन किसी वस्तु पर केन्द्रित होता है, तब ध्यान प्रारम्भ होता है। वस्तुतः जब हम कोई भी काम करते हैं—नौकरी, अध्ययन, समाजसेवा आदि, उस समय काम पर ही चित्त केन्द्रित रहता है। यह ध्यान का ही लौकिक रूप है। एक ईमानदार कर्मचारी अच्छा ध्यानयोगी माना जा सकता है। यह केन्द्रीकरण अभ्यास से ही सम्भव है, उतावलेपन से नहीं।

ध्यानयोग से मनःशुद्धि होने पर हमारी अन्तश्चेतना का रूपान्तरण और विकास होता है। यह बाहर से उतना प्रत्यक्ष नहीं हो पाता जितना अन्दर से अनुभव में आता है। दूध के दही में रूपान्तरित होने के समान विचार, भावनाएँ, इच्छाएँ, आवेग, उत्कण्ठा आदि ध्यान से रूपान्तरित होकर अन्तःशक्ति उत्पन्न करते हैं। वस्तुतः हमारा मन शैतान का ही घर नहीं है, शक्ति का भण्डार भी है। ध्यानयोग से मन की शक्ति के सार्थक उपयोग की दिशा मिलती है और जीवन आनन्दित होता है।

ध्यान का वैज्ञानिक अध्ययन

भारतीय मनीषियों ने हमें ध्यन के सम्बन्ध में दो प्रकार की जानकारी दी है: (१) ध्यान क्या है और कैसे किया जाता है? (२) इससे क्या लाभ होता है? प्रथम जानकारी विज्ञान की त्रि-चरणी (प्रयोग, निरीक्षण, निष्कर्ष) पद्धति में प्रथम चरण है। द्वितीय जानकारी निरीक्षण और निष्कर्ष का सम्मिलित रूप है। इस जानकारी में अनुभूति की सूक्ष्मता तो है, लेकिन प्रायोगिक परिणामों पर आधारित निष्कर्षों की व्याख्यापरक सूक्ष्मता और तीक्ष्णता नहीं है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण 'अचरजकारी क्यों' पर आधारित है। प्राचीन सन्तों ने आज के जिज्ञासु मस्तिष्क के लिये ध्यान का 'क्यों' समझने के लिये सामग्री नहीं दी है। यह उस समय सम्भव भी नहीं थी क्योंकि शरीर-तन्त्र एवं मस्तिष्क के अन्त-दर्शन, क्रियाविधि-ज्ञान, भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तन एवं रूपान्तरणों का आन्तरिक ज्ञान आज जैसा प्रयोग-सुलभ नहीं था। सब कुछ अनुभूति-गम्य था। उन्नीसवीं-बीसवीं सदी के वैज्ञानिक यन्त्रों व प्रविधियों के आविष्कारों ने हमें शरीर रचना, शरीरान्तः-क्रिया विज्ञान एवं मस्तिष्क के विषय में पर्याप्त जानकारी दी है। इससे ध्यान की रहस्यमयता की धारणा का स्पष्टीकरण हो जाता है और उसके व्यापक प्रचार के लिये समर्थन एवं प्रेरणा भी मिलती है।

ध्यान करनेवाले व्यक्तियों के शरीर की अन्तःक्रियाओं एवं घटकों पर होने वाले प्रभावों एवं परिवर्तनों के वैज्ञानिक निरीक्षण एवं व्याख्या हमें उस कड़ी की और संकेत देते हैं जो हमारे शास्त्रों में नहीं है। यह कड़ी ध्यान के निरीक्षित लाभों की व्याख्या करती है और आज के जिज्ञासु शिक्षित का शंका-समाधान करती है। ये परिणाम उन्हें ध्यानी बनने के लिये प्रेरक भी हैं।

ध्यान से सम्बन्धित अनुसन्धानों में अनेक उपकरण एवं रासायनिक विधियों का उपयोग किया जाता है। इनमें से निम्न मुख्य है:

(i) तौलने वाली मशीन: ध्याता के भार में परिवर्तन।
(ii) इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम तथा एक्स-किरण द्वारा हृदय का परीक्षण।
(iii) रक्तचापमापी या दाबमापी यन्त्र से रक्तचाप का मापन।
(iv) किरिलियन फोटोग्राफी से शरीर-परिवेशी आभामण्डल का अध्ययन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(v) त्वचावरोधमापी से त्वचावरोध मापना ।

(vi) वायो-फीड-बैक यन्त्र से परीक्षण ।

(vii) इलेक्ट्रो-एन्सेफिलोग्राफ द्वारा परीक्षण ।

(viii) मैग्नेटिक-रेजोनेन्स-इमेज उपकरण ।

(ix) मल, मूत्र एवं रक्त का रासायनिक विश्लेषण ।

इन उपकरणों की विविधता से यह स्पष्ट है कि ध्यान-सम्बन्धी शोध एक सामूहिक उपक्रम है ।

भारत में ध्यान-शोध का प्रारम्भ १९१० में हुआ था । डा० आनन्द, डा० गोपाल (पाण्डुचेरी), डा० लक्ष्मीकान्तन (मद्रास), स्वामी कैवल्यानन्द (पुणे) आदि इस शोध के अग्रणी थे । अब तो अनेक केन्द्रों पर अगणित व्यक्ति इस दिशा में शोध कर रहे हैं ।

शरीर-तन्त्र की रचना

ध्यान शरीर तथा मन-दोनों को प्रभावित करता है । अतः यह आवश्यक है कि हम इन दोनों घटकों के विषय में संक्षिप्त जानकारी रखें । भारतीय शास्त्रों में शरीर-तन्त्र को अष्टांगी (२ पैर, २ हाथ, वक्ष, पेट, पीठ और शिर) बताया गया है । ये सभी दृश्य अवयव हैं । इन अंगों के भीतरी रूपों को भी अस्थि, स्नायु, शिरा, मांसपेशी, त्वचा, आंत्र, मल, गर्भस्थान, नख, दन्त तथा मस्तिष्क के माध्यम से नामांकित किया गया है । यही नहीं, वहाँ वात, पित्त, कफ, मस्तिष्क, मेद, मल, मूत्र, वीर्य एवं वसा के परिमाणों को भी बताया गया है । आधुनिक शरीर-विज्ञानियों ने भी शरीर के बाह्याभ्यंतर संरचन का सूक्ष्म अध्ययन किया है । तुलना की दृष्टि से, अस्थियों एवं नाड़ियों की संख्या के शास्त्रीय विवरण इनके वर्णनों से मेल नहीं खाते । साथ ही, रक्त, वीर्यादि शरीर स्रावों की शास्त्रीय परिमाणात्मकता भी पर्याप्त भिन्न है । फिर भी, इनके विषय में निरीक्षण और परिमाणात्मकता की चर्चा हमारे आचार्यों की विचार एवं मेधाशक्ति की ओर तो संकेत करती ही है ।

आधुनिक शरीर-शास्त्री सम्पूर्ण शरीर-तन्त्र को दो आधारों पर विभाजित करते हैं—(i) स्थूल और (ii) शरीर-क्रियाएँ । स्थूल शरीर तो ये भी प्रायः अष्टांगी ही मानते हैं । शरीर-क्रियात्मक दृष्टि से, वे इसे नौ तन्त्रों में विभाजित करते हैं । इसके अन्तर्गत (i) अस्थि तन्त्र (ii) श्वसन तन्त्र (iii) उत्सर्जन तन्त्र और (iv) प्रजनन तन्त्र बाह्य रूप से निरीक्षित किये जा सकते हैं । पर (v) पेशीय (vi) पाचन (vii) रक्तपरिसञ्चरण (viii) स्नायविक तथा (ix) ग्रन्थि तन्त्र अन्तःशरीर में ही दृष्टिगोचर होते हैं । इस विभाजन का मूल आधार शरीर में होने वाली विभिन्न प्रकार की भौतिक या रासायनिक क्रियाएँ हैं । इन्हें समग्रतः जीव रासायनिक क्रियायें कहा जाता है ।

मानव जीवन को स्वस्थ व सुखी बनाने के लिये सामान्यतः शरीर के सभी तन्त्र एक-समान उपयोगी होते हैं । वे आदर्श प्रजातन्त्रीय रूप से एक-दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप किये बिना अविरत रूप से अन्य तन्त्रों को सहयोग देते रहते हैं । आत्मशक्ति के विकास में स्नायुतन्त्र तथा ग्रन्थितन्त्र महत्वपूर्ण हैं । ये दोनों ही तन्त्र मस्तिष्क में मुख्यतः और शरीर के अन्य अवयवों में सामान्यतः होते हैं ।

स्नायविक तन्त्र दो प्रकार का होता है—स्वायत्त और केन्द्रीय । स्वायत्त स्नायुतन्त्र बहिर्वाही न्यूरानों का बना होता है जो आमाशय, आँत, हृदय, मूत्राशय एवं रक्तवाहिकाओं की पेशियाँ प्रदान करते हैं । ये यकृत एवं अग्न्याशय को भी प्रेरित करते हैं । यह अनुकम्पी एवं परानुकंपी कोटि का तन्त्र होता है और जीवन मशीन चलाने के लिए एक्सेलरेटर और ब्रेक का काम करता है । इनका कार्य उत्तेजना और शिथिलीकरण है । इनके इस कार्य से तन्त्र में संतुलन बना रहता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीर-तन्त्र में दो प्रकार की ग्रन्थियाँ होती हैं—अन्तःस्रावी और बहिःस्रावी। अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ शरीर के विभिन्न स्थानों पर होती है और उनके स्राव भोजन से प्राप्त पदार्थों से बनते हैं और सीधे ही रक्त में मिलकर शरीर तन्त्र में पहुचते हैं। यह स्पष्ट है कि इन स्रावों का उचित मात्रा में निर्माण हमारे भोजन की पोषकता पर निर्भर करता है। कुछ अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के नाम कार्य व स्राव सारणी १ में दिये जा रहे हैं। प्रयोगों से यह पाया गया है कि यदि इन ग्रन्थियों को तन्त्र से काटकर अलग कर दिया जावे, तो उनसे सम्बन्धित क्रियाओं में मंदता एवं अवरोध आ जाता है।

सारणी १ : अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के विवरण

ग्रन्थि	स्थान	कार्य	स्राव
१. पीनियल पीयूषिका	मस्तिष्क	बाल्यावस्था को नियन्त्रित करना।	—
२. पिट्यूटरी, पीयूष	मस्तिष्क	सभी ग्रन्थियों का नियन्त्रण, आवेग या भावनात्मक नियन्त्रण, स्वायत्त स्नायु-तन्त्र।	छह होर्मोन स्रवित होते हैं: वृद्धि होर्मोन, एफ० एस० एच०, गोनड होर्मोन, ऑक्सीटोसिन, थायरो ट्रोपिक, एड्रीनोकोर्टिकोट्रोपिक।
३. ऐड्रीनल	वृक्क/किडनी	क्रोध, भय, उत्तेजना एवं स्वायत्त स्नायु तन्त्र का नियन्त्रण।	एड्रेनलीन, नोर-एड्रेनलीन, यौन होर्मोन।
४. थायरॉयड	गर्दन	चयापचय प्रेरक।	थायरोक्सीन, पेराथायरोक्सीन।
५. पेराथायरॉयड ग्रन्थि	,,	उत्तेजनशीलता, कैल्सियम नियंत्रक।	इंस्युलिन।
६. अग्न्याशय ग्रन्थियाँ	उदर	पाचन, कार्बोहाइड्रेटादि चयापचय।	बहिःस्रावी अग्न्याशयी रस।
७. प्रजनन ग्रन्थियाँ	जनन तन्त्र	शुक्राणु निर्माण, अंडाणु निर्माण।	(i) टेस्टोस्टेरोन। (ii) ऐस्ट्रोजन, प्रोजेस्टेरोन।

सामान्यतः ग्रन्थियों के स्रावों की मात्रा स्वयं नियन्त्रित होती रहती है। फिर भी, इन स्रावों को रासायनिक उद्दीपकों की सहायता से न्यूनाधिक किया जा सकता है। ये उद्दीपक भी प्रायः अंतःस्रावी होते हैं।

ये अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ वाहिनीहीन कहलाती हैं। इनके विपर्यास में लार, अश्रु, यकृत आदि कुछ ग्रन्थियाँ होती हैं जिनके स्राव विभिन्न वाहिनियों द्वारा शरीर-तन्त्र में पहुँचते हैं। ध्यान प्रक्रिया में इन ग्रन्थियों का उतना महत्व नहीं होता जितना सारणी १ में दी गई ग्रन्थियों का होता है। यह पाया गया है कि शरीर तन्त्र की शरीर-क्रियाओं एवं मस्तिष्क यथा भावनात्मक प्रक्रियाओं के समवेत रूप में सम्पन्न होने के लिये इन स्रावों का समुचित मात्रा में उत्पन्न होते रहना तथा स्नायु तन्त्र का सामान्य बने रहना अत्यावश्यक है।

मानव-मस्तिष्क का आधुनिक विवरण

मस्तिष्क प्राणियों की बुद्धि, व्यवहार, क्रियाओं एवं प्रतिभाओं का संचालन एवं नियन्त्रण करता है। मानव मस्तिष्क प्राणियों में सर्वाधिक विकसित होता है। जैन शास्त्रों में शरीर के अंगों के रूप में सिर तथा उसके अन्तर्घटक के रूप में मस्तिष्क का नामोल्लेख मात्र आता है। उसमें विकृति के कारण मूर्च्छा, पागलपन आदि रोग होते हैं। उसकी निर्मलता से जाति स्मरण और अन्तः प्रतिभा प्रसूत होती है। इसका प्रमाण एक अंजुलि (दोनों हथेलियों को मिलाने से बनने वाला संपुट, जिसमें लगभग १२५ ग्राम जल आता है) बताया गया है। इस विवरण की तुलना में आज के शरीर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्री के मस्तिष्क का विवरण अत्यन्त विस्तृत एवं सूक्ष्म है। मस्तिष्क की रचना और उसके घटकों के विशिष्ट कार्यों के अध्ययन में रंजन तकनीक, इलैक्ट्रान माइक्रोस्कोप तथा जीव-रासायनिक पद्धतियों से बड़ी सहायता मिली है। इससे हमें मस्तिष्क के अंगरंग का पूर्णतः तो नहीं, पर पर्याप्त ज्ञान हुआ है। इस ज्ञान से हम अनेक निरीक्षणों की तर्क संगत व्याख्या कर सकते हैं।

शरीर तन्त्र में मस्तिष्क और मेरुदण्ड (सुषुम्ना) केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र के महत्वपूर्ण घटक हैं। ये मकान के बिजली के स्विचबोर्ड के समान हमारे तन्त्र को समन्वित, संचालित, नियन्त्रित एवं विकसित करते हैं। शास्त्रों में मन के तीन भेद बताये गये हैं—चेतन (विचार, क्रिया), अर्धचेतन (स्वप्नादि) और अचेतन या आन्तरिक (शून्यता)। ये भेद उसके सूक्ष्मतर रूपों को व्यक्त करते हैं। शरीर-शास्त्री केवल चेतन मन की बात करता है।

सामान्यतः मस्तिष्क हमारे कपालकोटर में भ्रकुटी के पीछे से सिर के पिछले भाग तक फैला रहता है। यह एक जटिलतम तन्त्र है। इसका भार १२–१५०० ग्राम होता है और आयतन १.२–१.५ लीटर होता हैं। सामान्यतः मस्तिष्क के पाँच भाग होते हैं जिनमें प्रमस्तिष्क (मुख्य भाग), अनुमस्तिष्क व मध्यमस्तिष्क मुख्य होते हैं। प्रत्येक भाग में सतन्तुक न्यूरान कोशिकायें और उनके गुच्छक-स्नायु या तन्त्रिकायें होती हैं। इसकी कोशिकाओं की कुल संख्या १३० करोड़ से अधिक होती है। इनका विस्तार एक सेमी० के दस हजारवें भाग $१०^{-४}$ के बराबर होता है। प्रत्येक कोशिका लगभग पाँच लाख सम्पर्क स्थापित कर सकती है। प्रत्येक कोशिका में संवेदन या उत्तेजन के आने एवं उनके प्रेषण-नियन्त्रण की पृथक्-पृथक् व्यवस्था रहतो है। अनुमस्तिष्क या मध्यमस्तिष्क तो मस्तिष्क के मुख्य भाग के कार्य में सहायक होते हैं। मस्तिष्क में सारणी १ के अनुसार ग्रन्थियाँ भो होती हैं जिनके स्रावों से मन और शरीर पुष्ट और नियन्त्रित होता है। (चित्र : १)।

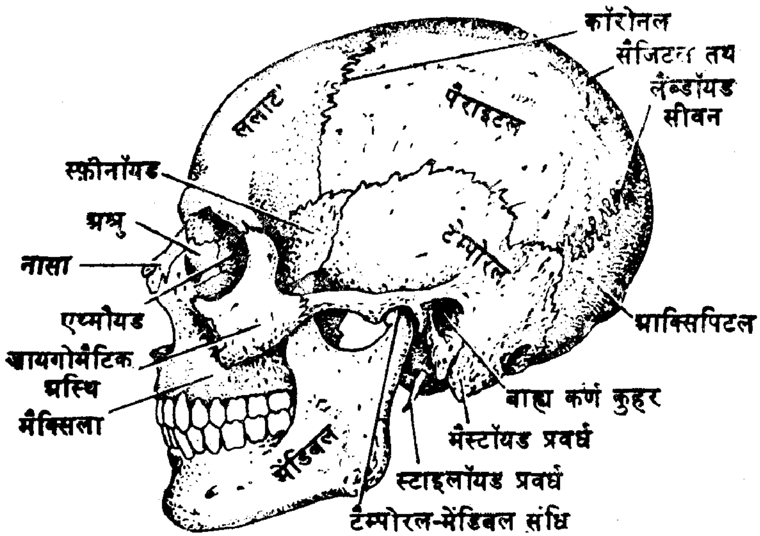

मस्तिष्क का मुख्य भाग दूर से देखने पर धूसर दिखता है और इसके अन्दर श्वेत द्रव्य रहता है। इसके दो भाग या गोलार्ध होते हैं। दाहिना गोलार्ध रचनात्मकता, सृजनशीलता, अन्तः प्रज्ञा, प्रतिभा, इन्द्रियातीत क्षमता तथा आकाशीय चाक्षुषीकरण क्षमता एवं चित्त शक्ति का प्रतीक है। यह परानुकम्पी तन्त्रिका-तन्त्र एवं सहज क्रियाओं का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संचालन करता है। इसके विपर्यास में, बाँया गोलार्ध बुद्धि, विचार, तर्क, निर्णय, संगठन, व्यवस्था तथा प्राणशक्ति का प्रतीक है। यह केन्द्रीय तन्त्रिका-तन्त्र एवं अनुकम्पी नाड़ी संस्थान या ऐच्छिक क्रियाओं का संचालन करता है।

ये दोनों गोलार्ध महासंयोजक (कोरपस कैलोसम) के द्वारा परस्पर में जुड़े रहते हैं। इन गोलार्धों की कोशिकायें भी सूक्ष्म तन्तुओं एवं सेरीटोनिन नामक चिपकावक पदार्थ के माध्यम से एक-दूसरे से जुड़ी रहती हैं। ये १२० मीटर/सेकेण्ड की दर से ज्ञानवाही एवं क्रियावाही सूचनाओं का आदान-प्रदान करती हैं। ये गोलार्ध और उसकी तन्त्रिकायें अनुमस्तिष्क और अन्य लघु घटकों के माध्यम से मेरुदण्ड एवं सुषुम्ना के सम्पर्क में रहते हैं। सुषुम्ना का दूसरा सिरा मेरुदण्ड के नीचे रहता है जो मस्तिष्क के संवेदनों के संचार पथ का काम करता है।

मस्तिष्क की कोशिकाओं और उनसे बनी तन्त्रिकाओं के दो विशिष्ट लक्षण पाये गये हैं—(१) दीर्घ जीविता एवं परिवेश-संवेदन तथा (२) उच्च चयापचयी सक्रियता। अनुसन्धानों से यह पाया गया है कि

(i) श्वासोच्छ्वास के अन्तर्गमित वायु का पंचमांश केवल मस्तिष्कीय कोशिकाओं को ही अपनी सक्रियता बनाये रखने में सहायक होता है।

(ii) मस्तिष्क का दाँया गोलार्ध हमारे बाँये शरीरांगों को प्रभावित करता है। इसी प्रकार बाँया भाग दक्षिणांगों को प्रभावित करता है।

(iii) पश्चिमी लोगों के मस्तिष्क का बाँया भाग अधिक सक्रिय होता है। पूर्वी क्षेत्र के व्यक्तियों का दाहिना गोलार्ध अधिक सक्रिय होता है।

(iv) मानव अपने मस्तिष्क की क्षमता का केवल दश प्रतिशत ही उपयोग कर पाता है।

मस्तिष्क की क्रिया-विधि की व्याख्या रासायनिक एवं विद्युत आधारों पर की जाने लगी है। इसकी कोशिका एवं स्नायुओं का औसत प्रतिशत संघटन निम्न पाया गया है :

(i)	जल	८०	—
(ii)	लिपिड	१०–१२	कोलस्टेरोल, कुछ फास्फोलिपिड, ऐमीनो लिपिड।
(iii)	प्रोटीन	७– ८	ग्लोबुलिन, न्यूक्लियो प्रोटीन, न्यूरोकेरेटीन।
(iv)	सोडियम—पोटेशियम के लवण	< १	

मस्तिष्क की सजीव कोशिकाओं को सक्रिय बनाये रखने के लिये रक्त के माध्यम से ग्लूकोज और श्वासों के माध्यम से ऑक्सीजन की समुचित मात्रा मिलना अनिवार्य है। यह अनेक कारणों से असंतुलित हो सकती है—(i) भोजन की विविधता (ii) परिवेश (iii) भावनात्मक स्थिति और (iv) होर्मोन-स्रावों में अव्यवस्था आदि। फलतः इनकी सक्रियता एक रासायनिक प्रक्रम है जिसमें सदैव ऊर्जा उत्पन्न होती है। इसे ही शास्त्रों में प्राण या मनःशक्ति कहा गया है।

इसी प्रकार स्नायुओं के द्वारा संवेदनों का संचार भी प्रमुखतः एक जटिल रासायनिक प्रक्रिया है। इसके अनुसार, जब किसी न्यूरान के संकेत उसके एक्सान तन्तुओं द्वारा दूसरे न्यूरानों को संचारित होते हैं, तब प्रेषक न्यूरान-तंत्रिका के सीमान्त पर कुछ न्यूरोहोर्मोन उत्पन्न होते हैं। इनमें ऐसीटिलकोलीन, ऐड्रैनलीन, वैसोप्रेसीन तथा ऑक्सीटोसिन आदि प्रमुख हैं। अन्य तंत्रों में भी डोपैमीन, ग्लूटैमिक अम्ल, इन्स्युलिन, गामा-ऐमिनो ब्यूटिरिक अम्ल, सैरीटोनिन तथा कुछ ऐन्जाइम उत्पन्न होते हैं। ये न्यूरोहोर्मोन अन्तराकोशिकीय क्षेत्र में विसरित होकर संवेदनों या उत्तेजनों को दूसरी कोशिकाओं पर संचारित करते हैं।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

इन रसायनों द्वारा संवेदन-संचरण की प्रक्रिया में कुछ भौतिक परिवर्तन भी होते हैं। इनके कारण कुछ तत्वों की कोशिकीय झिल्ली की प्रवेशन क्षमता में वृद्धि हो जाती है। इस कारण झिल्ली के दोनों ओर विश्रान्ति अवस्था में विद्यमान विद्युत्-शक्ति की वोल्टता में परिवर्तन होता है। यह वोल्टता-परिवर्तन भी संवेदन-संचरण को प्रेरित करता है। यह पाया गया है कि विश्रान्तिकाल में झिल्ली के आर-पार की वोल्टता–०.४५ मिलीवोल्ट होती है। यह संवेदन-संचरणकाल में, परिस्थितियों के अनुसार, न्यूनाधिक हो जाती है। रासायनिक पदार्थों के द्वारा न्यूरानों की विद्युत वोल्टता में होने वाले परिवर्तन से संवेग-संचरण की प्रेरित प्रक्रिया मस्तिष्क क्रिया विधि की विद्युत आधारित व्याख्या है। यह स्पष्ट है कि यदि संचरण की प्रक्रिया में भाग लेने वाले न्यूरोहार्मोन समुचित मात्रा में उत्पन्न न हों अथवा विद्युत-वोल्टता में उपयुक्त परिवर्तन न हो, तो मस्तिष्क की क्रियाविधि में व्यवधान या अप/अव सामान्यता सम्भव हो सकती है।

शरीर और मस्तिष्क पर ध्यान के प्रभावों का वैज्ञानिक अध्ययन

प्राचीन योगियों की ध्यान के प्रभावों के अनुभूतिगम्य होने की धारणा अब वैज्ञानिक प्रक्रियाओं एवं उपकरणों के माध्यम से उनकी प्रयोग-गम्यता में परिणत हो गयी है। ध्यान के दो प्रकार के प्रभाव होते हैं–दृश्य और अदृश्य। वैज्ञानिकों की अनुसंधान सीमा में दोनों प्रभावों का अध्ययन समाहित होता है।

ध्यान से शरीर-तंत्र की विविध प्रणालियों पर तीक्ष्ण प्रभाव पड़ता है। इन प्रभावों को शारीरिक और मानसिक कोटियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। इनका संक्षेपण नीचे दिया जा रहा है।

ध्यान के शारीरिक प्रभाव

(i) **सहज निद्रा :** यह माना जाता है कि आधुनिक समस्याग्रस्त जीवन में हमारा अनुकंपी नाड़ी संस्थान सदा उत्तेजित रहता है। इससे शनैः शनैः अनेक मनोविकार और रोग जन्म लेते हैं। इच्छाओं का दमन भी इन्हें प्रेरित करता है। औषधियाँ इनका तात्कालिक उपाय ही करती हैं। वे बाह्य दोष का निवारण करती हैं, पर मूल कारण यथावत् रहते हैं। यही नहीं, ये औषधियाँ कालान्तर में सहज निद्रा में भी व्यवधान बनती हैं। इस दिशा में ध्यान उत्तम प्रभाव उत्पन्न करता है। इससे प्राप्त होने वाली शारीरिक और मानसिक विश्रान्ति सहज निद्रा से भी सुखकर कोटि की होती है।

(ii) **चयापचय की दर में कमी** : ध्यानाभ्यास से चयापचयी क्रियाकलापों की दर में कमी हो जाती है। इसका कारण विविध दिशाओं की ओर से वृत्तियों को हटाकर एकदिशी प्रवर्तन है। अनेक दिशी वृत्तियों से सक्रियता या ऊर्जा व्यय अधिक होता है। एक दिशी वृत्ति में ऊर्जा व्यय कम होने से ऊर्जा-उत्पादक चयापचय की दर भी कम हो जाती है।

(iii) **कार्बन-डाइ-ऑक्साइड एवं ऑक्सीजन के उपभोग की मात्रा में कमी।** ध्यानावस्था में विश्रान्ति अवस्था की ओर वृत्ति होने से चयापचयी दर में कमी होती है। इस क्रिया में श्वासोच्छ्वास की वायु एवं कार्बन-डाइ-ऑक्साइड का गमनागमन में उपयोग होता है। यह पाया गया है कि निद्रावस्था की तुलना में ध्यान की अवस्था में ऑक्सीजन के उपभोग में दस प्रतिशत की अपेक्षा बीस प्रतिशत की कमी होती है।

(iv) **अन्य तंत्रों पर प्रभाव**

(अ) फेफड़े कम मात्रा में ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं।
(ब) श्वासोच्छ्वास की गति पचास प्रतिशत तक कम हो जाती है।
(स) वायु के अन्तः प्रवेश की गति बीस प्रतिशत तक कम हो जाती है।
(द) हृदय से रक्त निष्कासन की दर तथा धड़कन कम हो जाती है।
(य) चयापचयी दर की कमी से कोशिकाओं को कम रक्त की आवश्यकता होती है। इससे उन्हें विश्राम मिलता है और उनमें ऊर्जा संचय हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(र) ध्यानावस्था में गैल्वेनिक त्वचावरोध २५ से ५० प्रतिशत तक बढ़ जाता है।

(ल) ध्यान के समय ब्लड लेक्टेट के निर्माण की दर कम हो जाती है।

(व) ध्यानाभ्यास धमनियों से रक्तप्रवाह की दर बढ़ा देता है। इससे निरुपयोगी पदार्थों का निष्कासन अधिक होने लगता है।

(v) **रोगोपचार :** ध्यान से शिथिलीकरण होता है। इससे दुर्बल एवं रुग्ण ऊतकों को शक्ति एवं सक्रियता प्राप्त होती है। इससे रक्तचाप सामान्य बना रहता है। ध्यान रक्तचाप की उत्तम औषधि है।

ध्यान स्वचालित तंत्रिका तंत्र की सक्रियता को स्थिरता देता है। इससे तनावों के प्रति प्रतिरोध क्षमता बढ़ जाती है। इससे तनाव-जन्य ऊर्जा की क्षतिपूर्ति की दर कई गुनी बढ़ जाती है।

योग और ध्यान के अभ्यास से डा० श्रीनिवास ने हृदय रोग को शान्त करने में काफी सफलता पायी है। इससे गठिया रोग में भी लाभ होता है। ध्यान से दमा, मिर्गी/उन्माद में भी लाभ पाया गया है।

ध्यानासन की क्रियाओं से जापानवासियों की लम्बाई में वृद्धि देखी गई है। डा० पासे ने पूना के स्कूली बच्चों पर ध्यान का प्रयोग कर उनकी लम्बाई में २.६ सेमी० प्रतिमाह की वृद्धि प्राप्त की।

ध्यानिक क्रियाओं से अस्थि रोग, अतिअम्लता, अनेक चर्म रोग, गठिया रोग, सिर दर्द, सिर में चक्कर आना, मितली आना, लकवा (अतिनिम्न रक्तचाप), स्पेंडिलाइटिस, एलर्जी (प्राण शक्ति की कमी), अतिनिद्रा (निम्न रक्तचाप), कब्ज आदि अनेक सामान्य व जटिल शारीरिक व्याधियाँ दूर की गई हैं। अब योग या ध्यान चिकित्सा चिकित्सा विज्ञान की एक नई शाखा के रूप में विकसित हो रही है।

मस्तिष्क तन्त्र पर ध्यान के प्रभाव

ध्यान के समग्र मानसिक प्रभावों में निम्न प्रमुख हैं :

(१) दैनिक जीवन में तनाव-प्रतीकार क्षमता में आशातीत वृद्धि।

(२) दैनिक अनुभवों के प्रति अधिक सजगता एवं चेतनता।

(३) शरीर और मस्तिष्क में परस्पर समुचित समन्वय एवं सामन्जस्य।

(४) क्रियावाही तन्त्र की संवेदना और सजगता में वृद्धि।

(५) बौद्धिक संवेदनशीलता, समझदारी तथा स्मरण शक्ति में वृद्धि।

(६) बुद्धिपूर्वक निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि।

(७) मानसिक शक्ति में वृद्धि।

(८) प्राणियों में सृजनात्मक शक्ति की क्षमता का विकास।

(९) लक्ष्य, उद्देश्य या कार्य के प्रति रुचि में तीक्ष्णतापूर्ण वृद्धि जिससे आनन्द और सन्तोष की अनुभूति होती है।

(१०) शरीर की आभा और प्रभा में वृद्धि।

(११) पीयूषिका ग्रन्थि का जागरण और सक्रियण।

(१२) मस्तिष्क के दायें एवं बायें भाग (चेतन, सक्रिय) भाग में अधिक सन्तुलन।

(१३) मस्तिष्क की क्षमता की उपयोगिता का प्रतिशत १०% से अधिक होने लगता है।

(१४) कैंसर मुख्यतः निराशावादी दृष्टिकोण की उपज है। ध्यान के अभ्यास से इसके उपचार में काफी सफलता देखी गई है।

(१५) मानसिक उद्वेग मधुमेह के भी मुख्य कारण हैं। इस विषय में भी ध्यान बहुत सहायक सिद्ध हुआ है। इस विषय पर प्रमुख अन्वेषण भारत में ही हो रहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१६) स्वामी राम ने अमेरिका में ध्यानाभ्यास से अपनी इच्छा-शक्ति को तीव्र एवं नियन्त्रित करने में सफलता पाई है। इससे वे अनेक सिद्धियाँ प्रदर्शित करते हैं।

(१७) ध्यान अभ्यास से सीजोफ्रेनिया (अन्तराबंध) के समान अनेक मानसिक बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। मन्त्र जपन से शिथिलता एवं एकाग्रता प्राप्त होती है। यह ध्यान की अन्य विधाओं से भी सम्भव है।

(१८) ध्यान के समय प्रारम्भ में मनुष्य के वातावरण में ऐल्फा-तरंगों (८-१५ हर्ट्ज) की मात्रा बढ़ जाती है। ये मस्तिष्क की शक्ति एवं शांति की प्रतीक हैं। बाद में ये तरंगें ४०-४५ साइकल प्रति सेकेण्ड की तीव्रगामी तरंगों में परिणत हो जाती हैं।

ध्यान के विभिन्न प्रभावों की वैज्ञानिक व्याख्या

हमारी सजीवता के संचालन के मुख्य स्रोत आहार और श्वासोच्छ्वास है। यद्यपि उदर हमारे दृश्य आहार का प्रमुख केन्द्र है, पर आवेग, संवेग और विचार भी तो हमारे मस्तिष्क में आते-जाते हैं। इस तरह हमारा उदर तीन प्रकार का होता है—जिसमें आहार जावे, जिसमें विचार जावे और जिसमें भावनायें आवें। ये आहार ही श्वासोच्छ्वास तथा शरीर तन्त्र में विद्यमान अनेक स्रावों, ऐन्जाइमों और पाचक रसों की सहायता से होने वाली चयापचयी क्रियाओं के माध्यम से हमें जीवन शक्ति प्रदान करता रहता है। हमारे शरीर की अगणित कोशिकायें इन्हीं क्रियाओं से जीवनशक्ति प्राप्त करती हैं। यदि इन्हें नियमित रूप से और समुचित मात्रा में ऊर्जा न मिले, तो इनके कार्य एवं सामञ्जस्य में बाधा आ सकती है। एक स्थल की बाधा सम्पूर्ण तन्त्र को प्रभावित करती है। यद्यपि शरीर-तन्त्र पर सभी प्रकार के सहज संचालन का दायित्व है, पर तन्त्र की जटिलता को देखते हुए इसमें समय-समय पर, स्थान-स्थान पर, परिवेश एवं विद्युत लघुपथों के कारण असन्तुलन, अवरोध, अपक्षय आदि सम्भावित हैं। ध्यान के विविध रूपों के अभ्यास से ये बाधाएँ दूर होती हैं और तन्त्र शक्तिशाली, स्थिर एवं नियमित बना रहता है।

ध्यान की एक सौ बारह प्रक्रियाओं में प्रमुख आसन और प्राणायाम के दो प्रमुख उद्देश्य होते हैं—(i) शरीर के विभिन्न तन्त्रों को लचीला एवं क्रियाशील बनाये रखना तथा (ii) श्वासोच्छ्वास के द्वारा सम्पूर्ण शरीर और उसके विविध अंगों में वायु या ऑक्सीजन पहुँचाना। प्रारम्भ में यह श्वासोच्छ्वास ही 'प्राण' माना जाता था, इसी से प्राणी नाम है। इससे फेफड़ों एवं रक्त के माध्यम से सम्पूर्ण शरीर तन्त्र के कार्यकारी घटकों में ऑक्सीजन पहुँचाया जाता है। इसके समुचित अभ्यास से चयापचयी क्रिया की पूर्णता से पूर्वोक्त अनेक बाधायें दूर होती हैं और दीर्घजीविता आती है। यह देखा गया है कि अधिकांश प्राणियों में यह आदर्श स्थिति नहीं होती। अनेक कारक इस असन्तुलित स्थिति को जन्म देते हैं। प्राणायाम की श्वासोच्छ्वास प्रक्रिया की तीव्रता, मन्दता या स्तम्भन शरीर तन्त्र में अधिक वायु प्रदान करता है। इससे उपरोक्त कारणों से दमित या मन्दित चयापचयी क्रियाओं एवं अवरोधों में समाप्ति की दशा बनती है। इससे कोशिकीय विकास सहज गति से होता रहता है।

शरीर की अन्तःऊर्जा कोशिकाओं की सक्रियता एवं चयापचयी क्रियाओं की पूर्णता पर निर्भर करती है। ध्यान द्वारा ये दोनों ही लक्ष्य प्राप्त होते हैं। फलतः शरीर में ऊर्जा की मात्रा संतुलित और वर्धमान होती है। चयापचयी क्रियाओं में उत्पन्न ऊर्जा ही प्राणशक्ति कहलाती है। निश्चित रूप से यह पांच प्रकार के प्राणों से सूक्ष्मतर है। सामान्यतः प्राण अणु होते हैं, क्रिया के समय वे परमाणुरूप हो जाते हैं और उपयोगिता के समय वे शक्तिरूप में व्यक्त होते हैं। इस प्रकार प्राण उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर होते जाते हैं। यह पाया गया है कि ध्यान इस शक्ति में वृद्धि करता है। यह शक्ति और इसका संकेन्द्रण ही ध्यान के अतिरिक्त उसके विविध सहयोगी रूप—मंत्र, जप आदि से होने वाले शिथिलीकरण एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्रान्ति के कारण भी बढती है। इसकी प्रबलता ही स्पर्श-चिकित्सा के प्रभाव का मूल कारण है। यह पाया गया है कि प्रबल प्राणशक्ति के स्पर्श से रोगी के रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा बढ जाती है।

ध्यान का एक अन्य उद्देश्य भी है जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उपरोक्त प्रक्रिया में प्राणशक्ति की वृद्धि एवं संचय मात्र हुआ है। यही हमारे जीवन की, मन, वचन और शरीर की संचालक शक्ति है। जीवन की विविध दिशाओं में इतनी भिन्नता है कि कभी-कभी तो समुचित संतुलन हेतु शरीर में विद्यमान प्राणशक्ति की कमी का अनुभव होने लगता है। ध्यान इस कमी को दूर करता है। वह प्रवृत्तियों की विविधताओं पर नियंत्रण करता है और एक विशिष्ट दिशा देता है। इससे अनावश्यक शक्ति के व्यय में बहुत कमी हो जाती है और हमारा जीवन सदैव शक्ति संपन्न बना रहता है। यह माना जाता है कि हमारा मस्तिष्क शरीर का दो प्रतिशत भाग ही है, पर वह अपनी विविध क्रियायें संपन्न करने में शरीर की समग्र ऊर्जा का बीस प्रतिशत तक व्यय करता है। ध्यान के अभ्यास से विचारों की विविधता समाप्त होकर एकलक्ष्यी निर्विचारता आती है। इस स्थिति में शक्ति का व्यय कम होता है। इस प्रकार शक्ति-संवर्धन तथा शक्ति-व्यय में अप्रत्याशित कमी से प्राणी में अद्भुत अवस्था विकसित होती है। उमास्वाति का 'लब्धि प्रत्ययं च' सूत्र संभवतः इसी शक्ति-संपन्नता की अभिव्यक्ति को व्यक्त करता है।

प्राण शक्ति और तैजस शरीर

जैनों ने पांच शरीर माने हैं—औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण। इनमें तैजस और कार्मण शरीर सूक्ष्म और अदृश्य होते हैं। निर्वाण प्राप्ति के पूर्व ये सदैव जीव-संबद्ध रहते हैं। शरीरों का यह नाम क्रम उत्तरोत्तर सूक्ष्मता के आधार पर यह माना जाता है। यह क्रम प्रथम तीन शरीरों के लिये तो ठीक है, पर अन्तिम दो सूक्ष्म शरीरों के लिये विचारणीय लगता है। तैजस शरीर को सही रूप में समझने के लिये शास्त्रों ने भी कुछ प्रश्न लगाये हैं। यह माना जाता है कि यह तेजोरूप है, ज्वाला (ऊर्जा) रूप है, परमाणु प्रचयित (कणिकामय) होने पर सूक्ष्मतर है। कार्मण शरीर इससे भी अनंतगुना सूक्ष्मतर है। शास्त्रों में प्रायः सर्वत्र ही कार्मण शरीर को परमाणु-प्रचय रूप ही माना है। महाप्रज्ञ और अन्यों ने तैजस शरीर की ऊर्जात्मक रूप में ही व्याख्या की है। यह ऊर्जा ऊष्मा, प्रकाश या विद्युत्-किसी भी रूप में हो सकती है। इसके विपर्यास में कार्मण शरीर को तेजोरूप नहीं माना जाता। आइन्स्टीन के समीकरण (ऊर्जा = द्रव्यमान×प्रकाशवेग का वर्ग = mc^2) के अनुसार, विभिन्न ऊर्जाओं का द्रव्यमान, औसत तरंग-दैर्घ्य के आधार पर इलैक्ट्रान-जैसे सूक्ष्म कण से अल्पतर (10^{-28}–10^{-35}g) परिकलित होता है। फलतः द्रव्यमान के आधार पर विभिन्न ऊर्जायें या तैजसरूप सूक्ष्मतर होती हैं। ये परमाणु के सूक्ष्मतर मौलिक अवयवों-फोटानों के रूप है। विस्तार के आधार पर भी ये कणिकायें इलेक्ट्रान कणों से सूक्ष्मतर होते हैं। प्रकाश, ऊष्मा और ध्वनि की तुलना में कार्मण शरीर की कणिकायें वृहत्तर होनी चाहिए। अन्यथा ये तैजसरूप में ही समाहित हो जाती। फलतः तैजस और कार्मण शरीर की शास्त्रीय सूक्ष्मता का आधार द्रव्यमान है या विस्तार, यह स्पष्ट नहीं है। आधुनिक भौतिक दृष्टि से तैजस ऊर्जायें कार्मण से सूक्ष्मतर मानी जाती हैं।

यह प्रश्न उठता है कि पहले कार्मण शरीर होता है या तैजस शरीर? वस्तुतः ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं। एक-दूसरे के प्रेरक और जन्मदाता है। ध्यानी कहते हैं कि तैजस शरीर प्राणशक्ति या शारीरिक अन्तःक्रियाओं में उत्पन्न होने वाली ऊर्जाशक्ति है। अतः जबतक शारीरिक अन्तःक्रियायें नहीं होती, प्राणशक्ति का उत्पादन या विकास नहीं हो सकता। अतः लगता है कि कार्मण शरीर तैजस शरीर का पूर्ववर्ती होना चाहिये। यह मान्यता, फलतः सही लगती है कि पर्याप्ति प्राण का कारण है। पर्याप्तियों को कार्मण शरीर के समकक्ष मानना चाहिये। पर्याप्ति स्वयं शक्तिरूप नहीं, अपितु प्राणशक्ति की जन्मदात्री है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यानाभ्यास की दृष्टि से, शरीर की यह अन्तःशक्ति या प्राणशक्ति शास्त्रीय तैजस शरीर का एक रूप है। यही शरीर और मस्तिष्क को अनेक प्रकार से प्रभावित कर उसकी क्षमता में वृद्धि करती है। जब मस्तिष्क प्राणवान् होता है, तब मनःशक्ति का अनुभव होता है। जब शरीर प्राणवान् होता है, तब प्राणशक्ति अभिव्यक्त होती है। इन दोनों के सम्पर्क में आने से सांद्रण सेल (मस्तिष्क में आक्सीजन की अधिकता, अन्य तन्त्रों में इसकी सामान्य मात्रा) बनता हैं। इससे विद्युत् ऊर्जा उत्पन्न होती है। इसे ही शरीर-विद्युत कहते हैं। इसे शरीर के किन्हीं दो भिन्न और विशिष्ट केन्द्रों में इलेक्ट्रोड लगाकर यन्त्रों द्वारा सम्पर्कित कर परखा जा सकता है। इस सम्पर्क को इडा-पिंगला नाड़ियों के सम्पर्क के रूप में अनेक शास्त्रों में वर्णित किया गया है। इस विद्युत के कारण शरीर में किंचित् चुम्बकीय गुण भी आ जाते हैं। शरीर तन्त्र में व्यक्त होने वाली इन विभिन्न शक्तियों (प्राण, मन, विद्युत आदि) का समवेत रूप ही आधुनिक दृष्टि से चेतना शक्ति के समकक्ष माना जा सकता है। इसे शास्त्रीय जन शायद ही स्वीकार करें। ध्यान इसी चेतना शक्ति का संवर्धन एवं केन्द्रण करता है। मन और शरीर की असामान्य उत्तेजन या भावनात्मक दशाओं में तन्त्र के इन विद्युत और चुम्बकीय गुणों में न्यूनाधिकता होती रहती है। ध्यान इसे भी नियन्त्रित करता है।

वैज्ञानिक परीक्षणों का निष्कर्ष और ध्यान की उपयोगिता

ध्यान पर विभिन्न दशाओं में किये गये प्रयोग स्पष्ट करते हैं कि यह शरीर-तन्त्र का शोधन कर उसकी सक्रियता बढ़ाता है। वह मानव में असामान्य ऊर्जा की वृद्धि करता है। ध्यान के समय सामान्य कर्म, प्रवृत्ति, प्रयत्न शान्त होते हैं, विश्रान्ति रहती है पर विशिष्ट कर्म करने की क्षमता में आशातीत वृद्धि होती है।

हमारे शास्त्र और आचार्य ध्यान का लक्ष्य परा-इन्द्रिय बोध एवं अध्यात्म ही प्रमुख मानते हैं। वैज्ञानिक विचारधारा के अनुसार ये अनुभूतियाँ या लब्धियाँ शारीरिक या मानसिक विकास के ही ऊर्ध्वमुखी रूप हैं। इसीलिये उत्तरवर्ती जैनाचार्यों ने शारीरिक और मानसिक ऊर्जाओं को ऊर्ध्वमुख करने वाले सभी प्रक्रमों को ध्यान में समाहित किया है। ध्यान के अनेक लाभ इन प्रक्रमों के आनुषंगिक फल हैं। इस प्रकार, शास्त्रीय विवरण ध्यान के जिन तत्वों को प्रमुख मानता है वैज्ञानिक उन्हें आनुषंगिक मानकर और भी अधिक लाभान्वित होता है।

पठनीय सामग्री

१ **योग विद्या** (१९७८–८३); विहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।

२. **हिन्दुस्तान टाइम्स**, ५ जुलाई १९८७।

३. युवाचार्य महाप्रज्ञ : **प्रेक्षा ध्यान का यात्रापथ :** जैन विश्व भारती, लाडनूं, १९८४।

४. उग्रादित्याचार्य : **कल्याणकारक**, सखाराम नेमचन्द्र ग्रंथमाला, शोलापुर, १९४०।

५. युवाचार्य महाप्रज्ञ : **आभा मंडल**, जैन विश्व भारती, लाडनूं, १९८४।

६. सी० एच० बेस्ट ऐण्ड एन० बी० टेलर; **दी फिजियोलोजिकल बेसिस आव मेडिकल प्रेक्टिस,** साइंटिफिक बुक एजेन्सी, कलकत्ता, १९६७।

७. आचार्य रजनीश; **रजनीश ध्यान योग**, रजनीश धाम, पूना, १९८७।

८. पं० जगन्मोहनलाल शास्त्री; जैन शास्त्रों में वैज्ञानिक संकेत, (इसी ग्रंथ का विज्ञान खंड)।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org